International Educational Applied Research Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

E-ISSN No: 2456-6713

प्राचीन भारत की सामाजिक दशा का अवलोकन

सुरेश

शोधार्थी, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.10888051

भूमिका :

प्राचीन भारत के इतिहास का अध्ययन कई दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। भारत एक उस विशाल प्रायद्वीप का नाम है जिसे एशिया महाद्वीप में समृद्ध राष्ट्र माना जाता है । इसके दक्षिण, पश्चिम व पूर्व में महासागर है और उत्तर में हिमालय पर्वत धनुष की प्रत्यंचा की भाँति फैला हुआ है । संसार के अन्य देशों की भाँति, अधिकांश भाग भारतीय इतिहास का क्रम इसकी भौगोलिक स्थिति से निर्धारित है । भारत में गहरी नदियों द्वारा तथा बालूमय मरुभूमि एवं अगम्य वनों से घिरी हुई वक्र पर्वत श्रृंखलाओं द्वारा किये गए अन्तः विभाजन ने पृथकता की भावना को प्रोत्साहित किया है तथा देश को छोटी–छोटी राजनीतिक व सामाजिक इकाईयों में भी विभक्त कर दिया है फिर भी विभिन्नताओं में एकता भारतीय संस्कृति का मूल प्राण है।[1]

भारत की मूलभूत एकता 'भारतवर्ष' और 'भारतीसन्तति' इन दो शब्दों से झलकती है ।महाकाव्यों तथा पुराणों में सम्पूर्ण देश का नाम भारतवर्ष दिया गया है । इसके निवासियों को 'भारती सन्तति' कहा गया है । विष्णु पुराण के अनुसार 'वह देश, जो समुद्र के उत्तर तथा हिमालय 2 पर्वत के दक्षिण में स्थित है, यह भारत कहलाता है, यहाँ की सन्तान भारती कहलाती है।[2]

अन्य देशों के इतिहास की तरह भारत का इतिहास भी उस काल के वर्णन के साथ आरम्भ होना चाहिए जब मनुष्यों ने सर्वप्रथम यहाँ अपना निवास बनाया किन्तु यथार्थ इतिहास का केवल सत्य घटनाओं से सम्बन्ध रहता है और ये घटनायें किसी न किसी प्रकार की लिखित सामग्री या पुरातात्त्विक साक्ष्यों से ही तथा वर्तमान में आधुनिक तकनीक के अंतर्गत मौखिक इतिहास के द्वारा ज्ञात होती है ।

ताम्रयुग व लौहयुग के साथ ही हम ऐतिहासिक युग की सीमाओं में प्रविष्ट हो जाते हैं । यह निर्णय करना कठिन है कि ऋग्वैदिक काल जो भारतीय इतिहास का सबसे प्राचीन काल है, जिसके लिए हमारे पास लिखित प्रमाण है – ताम्रयुग का है या लौहयुग का । साधारण विचार यह है कि जिस समय ऋग्वेद की रचना हुई, उसके पहले ही लौहयुग आरम्भ हो चुका था ।[3] चाहे जो भी हो, ताम्रयुग की सभ्यता का एक उत्कृष्ट उदाहरण में उपलब्ध है । यह सिन्धु घाटी की सभ्यता के नाम से प्रसिद्ध है जिसका विकास सिन्धु की घाटी में हुआ और निकटवर्ती तथा सुदूरवर्ती अनेक प्रदेशों में यह बहुत दूर तक फैली है ।[4] दुर्भाग्यवश सिन्धु घाटी की सभ्यता के विषय में हमें लिखित प्रमाण नहीं मिलता, कुछ संख्या में मुहरें अवश्य मिली हैं,जिन पर कुछ अक्षर चित्रात्मक शैली में खुदे हुए हैं, पर ये अभी तक असंदिग्ध रूप से अपठित हैं ।

International Educational Applied Research Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

E-ISSN No: 2456-6713

इसलिए हम लोग सिन्धु की तराई के राजनैतिक इतिहास से सर्वथा अपरिचित हैं । सिन्धु घाटी सभ्यता की प्रारंभिक संस्कृति के प्रवर्तक कौन थे, इसका ज्ञान हमें ठीक–ठीक पता नहीं चलात ।[5]

सभ्यता निर्माण के उत्तरोत्तर क्रम में अगले चरण के रूप में विद्यमान सभ्यता का चित्र सिन्धु सभ्यता से कहीं भिन्न हैं । जिन लोगों ने इसका विकास किया, वे स्वयं को आर्य कहते थे । उनका प्राचीनतम साहित्य उस तरह के उच्च नागरिक जीवन का वर्णन नहीं करता, जैसा कि हड़प्पा सभ्यता की खुदाई से ज्ञात होता है । अभाग्यवश इस उल्लेखनीय जनसमूह के प्राचीनतम साहित्य वेदों का समय ठीक–ठीक निश्चित नहीं किया जा सकता । पूर्ण निश्चय के साथ यह कहना सम्भव हैं कि कालक्रमानुसार वेदों में वर्णित सभ्यता और ईसा पूर्व तीसरी सहस्त्राब्दी की सिन्धुसंस्कृति के बीच कैसा सम्बन्ध था । यद्यपि कुछ विद्वानों का विचार है कि आर्य भारत में बाहर से आए और सिन्धु सभ्यता के निवासी द्रविड़ थे, उन्हें युद्ध में परास्त करके आर्यो ने उनकी सभ्यता का विनाश किया तथा अपनी संस्कृति का विकास किया । प्राचीन आर्य सभ्यता को इतिहास की दृष्टि से दो भागों में बांटा जाता है । पूर्व वैदिक काल और उत्तर वैदिक काल । पूर्व वैदिक काल को ऋग्वैदिक काल भी कहते हैं ।[6]

पूर्ववैदिक या ऋग्वैदिक काल लगभग 1500 से 1000 ई॰ पू॰ माना जाता है तथा उत्तर वैदिक काल 1000–600 ई॰ पू॰ तक माना गया है । आर्यों के मूल निवास स्थान के सम्बन्ध में कई मत प्रचलित हैं जिनमें से 4 अधिकांश के द्वारा उन्हें बाहर से आये हुए बताया गया है किन्तु आधुनिक विचारधारा के विद्वानों का झुकाव आर्यो को भारत का मूल निवासी मानने की और ज्यादा है । भारत में आर्यों का आगमन संभवतः 1500 ई॰पू॰ से कुछ पहले हुआ । आरम्भिक आर्य पूर्वी अफगानिस्तान, पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश के सीमावर्ती भागों में निवास करने लगे । आर्यों का प्रारंभिक समाज कबीलाई और पितृसत्तात्मक प्रकृति का था । ऋग्वैदिक जातियों में शासन का प्रचलित रूप राजतन्त्र था किन्तु उत्तर काल में राजतन्त्र से भिन्न शासन वाली जातियों का उल्लेख भी प्राप्त होता है । बड़ी इकाईयों के नाम ग्राम, विश व जन थे । कुछ महत्त्वपूर्ण ऋचाओं में जनों के समूह की भी चर्चा है । ग्राम का अधिकारी 'ग्रामणी' विश का स्वामी 'विशपति' तथा जन का रक्षक 'गोप' था ।[7]

उत्तरवैदिक काल में आर्यों का प्रसार गंगा–यमुना के दोआब और सदानीरा (गंडक) नदी तक हो गया । आर्य सभ्यता का प्रमुख केन्द्र सरस्वती से गंगा के दोआब तक फैला था । कुरू और पंजाब जैसे बड़े– बड़े राज्य इसी क्षेत्र में स्थित थे । पूर्व में इन राज्यों से आगे बढ़ते हुए आर्यो ने कौशल, काशी, विदेह (उत्तरी बिहार) तक अपना प्रभाव 600 ई॰ पू॰ तक स्थापित कर लिया । मगध और अंग अभी आर्य संस्कृति के विस्तार क्षेत्र से बाहर थे । अथर्ववेद में मगध के लोगों को 'व्रात्य' कहा गया है । इससे मगध के लोगों के प्रति आर्यो की तिरस्कारपूर्ण दृष्टि प्रकट होती है ।

उत्तरवैदिक आर्यो का भौगोलिक प्रसार अभी विन्ध्यक्षेत्र के उत्तर तक ही सीमित था फिर भी विदर्भ, आन्ध्र आदि क्षेत्रों से आर्य परिचित थे । उपनिषदों में मिथिला के राजा जनक का उल्लेख है जो अपनी विद्वता के लिए विख्यात थे । राजा सम्पूर्ण भूमि का स्वामी नहीं था किन्तु राजाओं के अधिकार में बड़े–बड़े भूखण्ड अवश्य थे ।[8] इस काल तक आते–आते जनों का प्रायः लोप हो गया और विशाल राज्यों की स्थापना होने लगी । 'शतपथ ब्राह्मण' में कुरू और पांचाल को वैदिक सभ्यता का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधि कहा गया है । इस काल में राजा के अधिकारों में वृद्धि हुई, वे बड़ी–बड़ी उपाधियाँ धारण करने लगे ।

International Educational Applied Research Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

E-ISSN No: 2456-6713

अथर्ववेद में 'विश' के द्वारा राजा के निर्वाचन का उल्लेख है । राज्याभिषेक का प्रचलन था । राजा द्वारा रत्नियों (राज्यपरिषद् के सदस्य) को सम्मान दिया जाता था। रत्नियों में राजा के सम्बन्धी, मन्त्री, विभागाध्यक्ष एवं दरबारीगण सम्मिलित थे । अथर्ववेद में सभा समिति को प्रजापति की दो पुत्रियाँ बताया गया है । इससे इस काल में इन संस्थाओं के अधिकारों में वृद्धि परिलक्षित होती है ।[9] वी॰ ए॰ स्मिथ के कथनानुसार 'भारत का नियमित इतिहास लगभग सातवीं ई॰ पू॰ से प्रारम्भ होता है । इससे पहले का कोई श्रृंखलाबद्ध इतिहास नहीं मिलता । 7 वीं शताब्दी ई॰ पू॰ के बाद भी घटनाओं के सम्बन्ध में हमारी जानकारी बहुत कम है । केवल गंगा के कछार के कुछ राज्यों का ही थोड़ा सा इतिहास हमें मिलता है । दक्षिण या सुदूर दक्षिण के प्रारंभिक राज्यों के संबंध में हमें कुछ ज्ञान नहीं है । महाभारत के युद्ध में पाण्डवों की विजय से उत्तर भारत में जो राजनैतिक एकता स्थापित हुई, वह अधिक समय तक कायम न रही । अनेक छोटे–बड़े राज्य स्वतन्त्र हुए और कुछ नवीन राजवंशों का उत्थान हुआ ।[10] अंगुत्तर निकाय नामक बौद्धग्रन्थ के अनुसार छठी शताब्दी ई॰ पू॰ में भारत में कोई सर्वोच्च सत्ता नहीं थी । सोलह बड़े–बड़े राज्य थे, जिनको इतिहासकारों ने षोड्स महाजनपद कहा है । इनमें से कुछ राज्य तो राजाओं द्वारा शासित थे और कुछ का शासन गणतान्त्रिक था । वज्जि, मल्ल, शाक्य और लिच्छवी राज्यों का विधान गणतन्त्रात्मक था । राजतन्त्रात्मक पद्धति वाले राज्य मुख्यतः चार थे – अवन्ती, जिसकी राजधानी उज्जैनी थी, जिसका राजा प्रद्योत था, कौशल, जिसकी राजधानी श्रावस्ती थी और राजा प्रसेनजित था, मगध जिसकी राजधानी राजगृह थी और जिस पर शिशुनाग–वंशी शासक राज्य कर रहे थे, वत्स, जिसकी राजधानी कौशाम्बी थी और राजा भरत वंशी उदयन था ।[11]

कुषाण–साम्राज्य के पतन के कुछ समय बाद हम प्राचीन भारत के स्वर्णयुग महान् गुप्त साम्राज्य को धरा पर अवतरित पाते हैं जिसमें चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय, कुमारगुप्त, स्कन्दगुप्त, जैसे 'सर्वराजोच्छेता' सम्राटों की पूरी एक श्रृंखला विद्यमान हैं, जिन्होंने सम्पूर्ण भारत के साथ–साथ भारत की सीमाओं से बहुत आगे जाकर भी अपना साम्राज्य विस्तृत किया, वरन् आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक सभी क्षेत्रों में अद्‌भुत चरमोत्कर्ष को प्राप्त किया ।[12] गुप्तकाल के पतन के बाद वर्धन वंश ने उत्तरी भारत में एक बार फिर भारत के अन्तिम साम्राज्य के दर्शन महान् शासक हर्ष उत्पन्न हुआ जो अपनी दानशीलता के लिए विशेष रूप से विख्यात हैं ।[13]

- **प्राचीन भारत की सामाजिक दशा :**

किसी भी समाज की आधारशिला उसकी सामाजिक दशा होती है इसलिए किसी भी समाज का अध्ययन तब तक पूर्ण नहीं होता जब तक कि उस समाज की सामाजिक दशा का अध्ययन न किया जाए । प्राचीन भारत में प्रारम्भ से लेकर प्राचीन काल की समाप्ति तक सामाजिक स्थिति के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं ।

- **सिन्धु सभ्यता में सामाजिक दशा :**

प्राचीन भारतीय इतिहास का अध्ययन करने पर हमारे समक्ष सर्वप्रथम सिन्धु घाटी सभ्यता का काल आता है । पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि हड़प्पा सभ्यता का समाज एक सुव्यवस्थित समाज था ।[14] मकानों की बनावट धनी, निर्धन दोनों वर्गो के अस्तित्व का संकेत देती है । यहाँ के समाज को विद्वान, योद्धा, व्यापारी, किसान और

International Educational Applied Research Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

E-ISSN No: 2456-6713

कारीगर चार वर्गों में बांटा गया है जिसमें योद्धाओं की संख्या संभवतः कम थी । इतिहासकारों ने इसे 'प्रथम नगरीकरण' का काल कहा है ।[15] सिन्धु सभ्यता के उपरान्त वैदिक काल में समाज चार वर्णो में विभाजित हो गया । इस काल में समाज में स्त्रियों का महत्त्वपूर्ण व सम्मानित स्थान था ।[16] जनता धार्मिक कार्यों में विशेष रूचि रखती थी । आरम्भ में वर्ण व्यवस्था कर्मणा (कर्म के आधार पर) थी किन्तु उत्तर वैदिक काल में यह जन्मना हो गई । कहा जाता है कि आर्य वर्णव्यवस्था में केवल तीन उच्च वर्ण थे, चौथे वर्ण के रूप में उन्होंने अनार्य जातियों को पराजित करने के बाद शामिल कर लिया और उन्हें दास, दस्यु, देवताओं में श्रद्धा न रखने वाले (अदेवयु), वेदों को न मानने वाले (अब्रह्मन), यज्ञ न करने वाले (अयज्वन), बिना नासिका वाला (अनासा), अस्पष्टवादी बोलने वाले (मृधुवाच), काली सन्तान वाले (कृष्ण गर्भा), लिंगपूजक (शिश्नदेवा) कहा ।[17]

- **उत्तर वैदिक काल में सामाजिक दशा :**

उत्तरवैदिक काल से ही समाज में सामाजिक व नैतिक पतन के चिन्ह दृष्टिगोचर होने लगे थे, जो महाकाव्य काल में पूरी तरह स्पष्ट हो गए । स्त्रियों की दशा में अत्यन्त गिरावट आ गई, अब केवल एक उपभोग की वस्तु के रूप में उनकी भूमिका प्रमुख हो गई । राम ने सीता को अकारण निष्कासित कर दिया । इसी प्रकार महाभारत काल में दुर्योधन ने भरी राजसभा में द्रोपदी का अपमान किया । युधिष्ठिर ने अपनी पत्नी को वस्तु के समान जुए में दांव पर लगा दिया । ये उदाहरण समाज में निरन्तर पतनोत्मुख नारी दशा के सूचक हैं ।[18]

छठी शताब्दी ईसा पूर्व बौद्ध व जैन धर्मो के उदय के फलस्वरूप सामाजिक व्यवस्था में अवश्य कुछ परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं । समाज में समानता और सद्‌आचार को बल मिला किन्तु मौर्य काल तक आते–आते पुनः वही प्राचीन सामाजिक दशा अपने बन्धन और अधिक दृढ़ कर लेती है ।[19]

- **मौर्य काल में सामाजिक दशा :**

मौर्यकाल में कौटिल्य ने, जो एक परम्परावादी ब्राह्मण था, रूढिवादी वैदिक व्यवस्था को पुनः स्थापित किया । समाज में अब भी चार वर्ण विद्यमान थे, जिनमें ब्राह्मण सर्वोच्च व विशेषाधिकार सम्पन्न थे । शूद्रों की स्थिति अच्छी नहीं थी । इसका उदाहरण नन्द वंश हैं जिसे नीचकुल से सम्बन्धित होने के कारण शक्तिशाली राजकुल होते हुए भी यूनानी लेखकों ने भी 'उद्‌भव की हीनता' के कारण जनता द्वारा घृणित और अनादृत कहा है । अशोक के शिलालेखों से पता चलता है कि स्त्रियों में अन्धविश्वास पर्याप्त मात्रा में थे । सती प्रथा नहीं थी । स्त्रियां राजकार्यों में भी पर्याप्त रूप से भाग लेती थी । राजा की अंगरक्षक व सहायिकाएं महिलाएं ही होती थी । गणिकाओं को बड़ी संख्या में गुप्तचर के रूप में नियुक्त किया जाता था । स्त्रियों को दार्शनिक ज्ञान देना उचित नहीं माना जाता था ।स्त्री हत्या 'ब्रह्महत्या' के समान भयंकर अपराध था । उस समय में कौटिल्य के अनुसार दासप्रथा विद्यमान थी उसने दासों के विभिन्न प्रकारों का विस्तृत वर्णन किया है । आमोद–प्रमोद के अनेक साधन उपलब्ध थे । मल्लयुद्ध, पशुदौड़, रथदौड़, तैराकी, नाव चलाना, झूला, क्रीड़ा आदि प्रमुख मनोरंजन के साधन थे ।[20]

मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद भारत में उत्तर, पूर्व और दक्षिण तीन स्थानों पर ब्राह्मणों का शासन हो गया । जिसके परिणामस्वरूप वर्णव्यवस्था की कट्‌टरता पर आधारित रूढ़िवादी सामाजिक व्यवस्था एक बार पुनः स्थापित हो गई ।[21]

International Educational Applied Research Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

E-ISSN No: 2456-6713

- **गुप्तकाल में सामाजिक दशा :**

गुप्तकाल में भी समस्त समाज चार वर्गो में विभक्त था । तत्कालीन साहित्य से ज्ञात होता है कि वर्ण व्यवस्था के बन्धन पर्याप्त जटिल थे परन्तु व्यवहारिक रूप में पर्याप्त रूप में लचीले थे । उच्च वर्णो में खानपान पर प्रतिबन्ध नहीं था । केवल शूद्र वर्ण ऐसा था । जिसके यहां अन्य तीन वर्णो के लोग भोजन नहीं करते थे । चाण्डाल के रूप में एक अन्त्यज वर्ग भी विद्यमान था, जिसका स्थान समाज में शूद्रों से भी अत्यन्त निम्न था । ये लोग शहर से बाहर रहते थे तथा नगर में प्रविष्ट होते समय एक प्रकार का नगाड़ा बजाते थे जिससे अन्य वर्ण के लोग उनके प्रभाव से अशुद्ध होने से बच जाएं । अपने वर्ण के अनुकूल कार्य करना आवश्यक नहीं था । मयूरशर्मन तथा विन्ध्यशक्ति नामक ब्राह्मणों ने क्षत्रियवृत्ति ग्रहण की हुई थी । विवाह प्रायः अपने वर्ण में ही किया जाता था । विधवा विवाह विद्यमान था, जिसका उदाहरण चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा अपने भाई की विधवा के साथ विवाह है, सती प्रथा भी विद्यमान थी । समाज में लोग सामान्यतः शाकाहारी थे । फाहयान ने भी अपने वर्णन में तत्कालीन लोगों के सात्त्विक जीवन का वर्णन किया है । दास प्रथा भी विद्यमान थी ।[22]

निष्कर्ष :

किसी भी देश और राष्ट्र के इतिहास में उसकी सामाजिक व्यवस्था एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है । सामाजिक आधार पर ही किसी देश का उत्थान व पतन निर्भर करता है । प्राचीन भारत में भी सामाजिक व्यवस्था भारत के इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखती है । सामाजिक व्यवस्था के भारत के इतिहास में कभी दुर्बल व कभी अत्यधिक सबल होने के परिणाम स्वरूप से ही हम देखते हैं कि प्राचीन भारत में देश में एक सुसंगठित एकाधिराज्य की स्थापना हुई तो कभी देश छोटे–छोटे राज्यों में बंटा रहा है । इस शोध पत्र में प्राचीन भारत की सामाजिक व्यवस्था पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है ।

संदर्भ सूची :

1. डॉ॰ आर॰ सी॰ मजूमदार, एच॰ सी॰ रायचौधरी एवं कालिकिंकर दत्तः भारत का वृहत इतिहास, प्राचीन भारत 1, पृ॰ 1, 3, 4 अनु॰ योगेन्द्र मिश्रा, पुनर्मुद्रित 1994, मद्रास।

2. उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमाश्चैव दक्षिणम्।

वर्ष तद् भारत नाम भारतीयत्र सन्ततिः । विष्णु पुराण, 2, 3, 1।

3. मजूमदार, रायचौधरी, दत्तः वही, अध्याय 2, पृ॰ 6 ।

4. मजूमदार, रायचौधरी, दत्तः वही, अध्याय 2, पृ॰ 10ए 12

5. एन्शियट इण्डिया, बुलेटिन ऑफ आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, नं॰ 18, 19 (1962–1963), एक्सकेवेशन एट रंगपुर साउथ एक्सप्लोरेशन इन गुजरात बाई एस मजूमदार, रायचौधरी, दत्तः वही, अध्याय 2, पृ॰ 6 आर॰ घोष एण्ड कृष्णा लाल पृ॰ 7।

6. मजूमदार रायचौधरी दत्त, वही, पृ॰ 20, 21 ।

International Educational Applied Research Journal

A Multi-Disciplinary Research Journal

E-ISSN No: 2456-6713

7. डा॰ रोमिला थापर : एन्शियन्ट इण्डिया, दिल्ली, पृ॰ 25 ।

8. मजूमदार, रायचौधरी, दत्त, वही, पृ॰ 34, 35 ।

9. वही, पृ॰ 36, 37 ।

10. डा॰ ललित मुखर्जी : भारत का इतिहास, ग्वालियर 1989–90, अध्याय–8, पृ॰63 ।

11. डा॰ ललित मुखर्जी : भारत का इतिहास, ग्वालियर 1989–90, अध्याय–8, पृ॰ 63, 65 ।

12. एन्शियन्ट इण्डिया, बुलेटिन ऑफ द आर्कियालॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया नं॰ 18, 19, 1962 एण्ड 1963, 2, पृ॰ 45, 47 ।

13. ओमप्रकाश : प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, नई दिल्ली, 1998, अध्याय–6, पृ॰ 94 ।

14. ओमप्रकाश : प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, नई दिल्ली, 1998, अध्याय–6, पृ॰ 134–137 ।

15. वही, पृ॰ 50, 57 ।

16. महाभारत 2 : 86, 40:2, 89, 17 ।

17. जातक 301, कालकंज जातक, येगमल जातक, उरंग जातक, कटाहक जातक, सतसोम जातक ।

18. अश्वशास्त्र : शामशास्त्री, पृ॰ 6 अर्थशास्त्र 1, 3, अर्थशास्त्र, 3, 20, अर्थशास्त्र 2, 27, अर्थशास्त्र 3, 1

19. ओमप्रकाश : पूर्वोद्धृत, पृ॰ 128 अर्थशास्त्र 2, 24, अर्थशास्त्र 3,13, अर्थशास्त्र 3, 2, 15–18 ।

20. ओमप्रकाश, वही, पृ॰ 61, अध्याय–4, धर्मशास्त्र का इतिहास,(प्रथम भाग) वी॰ पी॰ काणे, अनु॰ अर्जुन चौबे कश्यप, पृ॰ 330 ।

21. याज्ञवल्कय स्मृति; (अनु॰) मातृगुप्त त्रिवेदी, पृ॰ 286, डा॰ एम॰ पी॰ श्रीवास्तव : प्राचीन भारतीय संस्कृति, कला व दर्शन, वही, पृ॰ 174, याज्ञवल्क्य स्मृति 1, 55, 57, जयशंकर मिश्र : प्राचीन भारत का सांस्कृतिक इतिहास, पृ॰ 366 ।

22. ब्रिजेट एंड रेमण्ड आलचिन; दि बर्थ ऑफ इण्डियन सिविलाइजेशन, पृ॰ 271 ।